Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.10, October,2025

भारत में जनगणना: औपनिवेशिक रणनीति से लोकतान्त्रिक राजनीति तक

* **डॉ प्रकाश कुमार पटेल**
राजनीति विज्ञान विभाग
दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

****

Abstract: *यह अध्ययन भारतीय समाज में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश शासन ने धर्म, जाति और नस्ल के आधार पर भारतीय समाज को विभाजित कर "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाई। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों के माध्यम से जाति व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया गया। जनगणना, कानूनी संहिताकरण और सामाजिक वर्गीकरण ने असमानताओं को बढ़ाया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज में विभाजन गहरा हुआ और राष्ट्रीय एकता प्रभावित हुई। यह शोध दर्शाता है कि औपनिवेशिक नीतियों ने भारत की सामाजिक चेतना और संरचना को गहराई से परिवर्तित किया।*

Keywords: *ब्रिटिश उपनिवेशवाद, भारतीय समाज, जाति व्यवस्था, धर्म, सामाजिक संरचना, औपनिवेशिक नीति, राष्ट्रीय एकता*

****

प्रस्तावना:

भारतीय समाज शुरू से विविधताओं से परिपूर्ण रहा है. यहाँ सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई विविधता के साथ-साथ क्षेत्रीय आधार पर भी विविध परम्पराएँ व रीति-रिवाज पाए जाते है. जो इस कहावत को चरितार्थ करता है कि भारत में जहाँ हरेक 50 कि.मी. पर मिट्टी बदल जाती है वहीँ केवल हरेक 10 कि.मी. पर भाषा व रीति-रिवाज बदल जाते है. भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले लोग हैं, लेकिन यहाँ विविधता केवल विविध धर्मों के मध्य व्याप्त नही है, बल्कि धर्मों के भीतर भी क्षेत्रीय, भाषाई व पंथीय भिन्नताएं पाई जाती हैं. भारत में पाए जाने वाले धर्मों में हिन्दू, इस्लाम, इसाई, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध इत्यादि प्रमुख हैं, जो अपनी आस्था व उपासना पद्धति में एक दुसरे से भिन्नता प्रदर्शित करते हैं. लेकिन एक धर्म को मानने वाले लोग अनेक पंथो, जातियों में विभाजित हैं तथा उपासना की पद्धति , रीति-रिवाजों व परम्पराओं में एक दुसरे से उतनी ही भिन्नता प्रदर्शित करते हैं, जितनी कि विभिन्न धर्मों के मध्य भिन्नता पाई जाती है. कभी-कभी तो यह भी देखने में आता है कि अलग-अलग धर्मों को मानने वाले लोग भी भौगोलिक निकटता के कारण परम्पराओं व रीति-रिवाजों के मामले में एक दुसरे से काफी समानता प्रदर्शित करते हैं, वही सामान धर्म के लोगों से भौगोलिक दूरी के कारण भिन्नता प्रदर्शित करते हैं.**(anderson, 1991:163)**

भारत में शुरू से ही धर्म व समाज के मध्य नजदीकी सम्बन्ध रहा है. यहाँ सामाजिक मूल्य, मान्यताएं व रीति-रिवाजों पर धर्म का स्पष्ट प्रभाव रहा है. इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम हिन्दू धर्म में पाई जाने वाली जाति व्यवस्था व सामाजिक

श्रेणीकरण का स्रोत हिन्दू धार्मिक ग्रंथ वेद में दिए गये नियमों में देख सकते हैं. भारत में सामाजिक आचार- व्यवहार, रिवाज, व मान्यताएं धार्मिक आयातों व धार्मिक ग्रंथो में की गयी व्याख्या पर आधारित रहीं हैं.**(Kaviraj, 1993:20).** अतः जब- जब समय के साथ समाज में सुधार की आवश्यकता महशुस की गयी, तब – तब सामाजिक सुधारकों को धार्मिक सुधारों के माध्यम से इस प्रक्रिया में प्रवेश करना पड़ा. क्योकि उन सुधारों को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों को यह विश्वास दिलाया जाये कि किये गये सुधार की प्रकृति धार्मिक नियमों के अनुकूल है. लेकिन तमाम धार्मिक, सामाजिक, भाषाई व नृजातीय विविधता के बावजूद भारत में शुरू से ही विभिन्न वर्गों के मध्य एक दुसरे के भिन्न परम्पराओं, मान्यताओं, व रीति-रिवाजों के प्रति सामंजस्य का भाव रहा है, जो यहाँ अनेकता में एकता की सार रही है. लेकिन अंग्रेजी शासन के आने से पहले कभी भी ये विविधताएँ इस स्तर तक नही पहुंची कि इनसे किसी प्रकार का सामाजिक, धार्मिक या नृजातीय तनाव की स्थिति पैदा हो सके. भारत पर अंग्रेजों से पहले अनेक विदेशी आक्रमणकारियों ने शासन किया, लेकिन वे इस विविधात्मक एकता को तोड़ नही पाए बल्कि इसी में घुल मिल कर रह गये या कुछ समय के बाद अपने मूल देश को लौट गये. लेकिन अंग्रेजों का भारत पर शासन, भारत आये अन्य विदेशी शासकों की तरह नही था. जहाँ अफगानों, मुगलों व अन्य विदेशी शासकों ने भारत पर अधिकार करने के बाद भारत को अपना देश माना तथा वे यहाँ की संस्कृति में ढल गये. वहीँ भारत में अंग्रेजी शासन का उद्देश्य यहाँ शासन करना नही, बल्कि भारत का आर्थिक व व्यापारिक दोहन करना था. तथा इस प्रक्रिया को सुचारू बनाने के लिए यह आवश्यक था कि उनका यहाँ के राजनितिक शासन प्रणाली पर उनका अधिकार हो. उन्होंने भारत को कभी भी अपने देश के रूप में नही देखा, अतः उन्होंने यहाँ सिर्फ उन्ही क्षेत्रों में हस्तक्षेप की नीति अपनाई जहाँ उनके आर्थिक व व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति होती थी.**(Gupta, 2004:134)**

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में भारत का सामाजिक व धार्मिक स्वरुप तथा उसके प्रति ब्रिटिश शासन का दृष्टिकोण:-

भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों पर राजनितिक नियंत्रण ज़माने के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए यह बहुत आवश्यक था कि वह उस जनता के जीवन के विभिन्न आयामों से परिचित हो जिनके ऊपर उन्हें शासन करना था ताकि भावी प्रजा की ऐच्छिक सहमति प्राप्त की जा सके. जैसा की ऊपर वर्णित किया गया है कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुख्य उद्देश्य कंपनी के माध्यम से भारत का आर्थिक व व्यापारिक शोषण करना था, तथा उसी प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए यहाँ के राजनितिक सत्ता

पर अधिकार किया गया था लेकिन यूरोप के अधिकतर ऐतिहासिक और मानवशास्त्रीय रचनायों में इसे सिविलाईजिंग मिशन के रूप में देखा और बखाना गया. सिविलाईजिंग मिशन सिद्धांत के अनुसार गैर यूरोपीय देशों में निम्न संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं जिनको सभ्य बनाने की जिम्मेवारी यूरोपिय संस्कृतियों पर है, अतः सभ्य बनाने के साथ-साथ इस प्रक्रिया में आर्थिक व व्यापारिक मुनाफा कमाना हरेक यूरोपियन अपना अधिकार समझता था. अतः इसके लिए इन शासकों ने भारतीय संस्कृति, धर्म ग्रंथो तथा जाति, धर्म, नस्ल आदि का विस्तृत अध्ययन किया तथा शासन के लिए इन्हें एक वैचारिक साधन के रूप में प्रयुक्त किया. अनेक भारतीय और विदेशी बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति, धर्म तथा जाति पर ब्रिटिश परिकल्पनाओं का परीक्षण किया है कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने अपने स्वार्थ के लिए इन्हें तोड़ने मरोड़ने का प्रयत्न किया. भारत पर अपना राजनितिक प्रभुत्व मजबूत करने के लिए अंग्रेजो ने मुगलों के राजनितिक ढाँचे को रद्द कर दिया तथा इसके स्थान पर ब्राह्मणवादी संस्कृति की स्थापना की. क्योकि यह संस्कृति भारत में पाए जाने वाले सबसे अधिक व प्रभुत्व हिन्दू जनसँख्या के अभिजात्य वर्ग के भावना व विश्वास पर आधारित थी और इसके बारे में अंग्रेजों के द्वारा यह दावा किया गया कि यह भारतीय धार्मिक ग्रंथों पर आधारित क्लासिकी भारतीय समाज के अनुकूल है. क्लासिकी भारतीय समाज इस मान्यता पर आधारित था कि भारत में आर्यन ब्राह्मण समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला यह औपनिवेशिक शासन एक स्वाभाविक शासन है. यह विचार 19वीं तथा 20वीं शताब्दी की यूरोपीय नस्ल सम्बंधित सिद्धांतो से मेल खाता था. भारतीय सामाजिक व धार्मिक सरंचना का स्वरुप जानने तथा इसके आधार पर प्रजा के व्यवहार जानने की यह प्रक्रिया भारत के प्राचीन आर्य धार्मिक ग्रंथों पर निर्भरता के साथ आरम्भ हुई तथा जिससे ब्रिटिश शासन को भारत के विभिन्न दूर-दराज के क्षेत्रों में पहुचने में तेजी आ गई और वह औपनिवेशिक शासन के लिए सभी सम्बंद्ध सूचनाएं एवं ज्ञान संचित करने में सफल हो गया, हालाँकि इसके लिए यह ब्राह्मणों के विशिष्ट ज्ञान पर भी अत्यधिक निर्भर रहा. ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर ब्रिटिश शासन द्वारा निर्मित क्लासिकी भारत की अवधारण एक स्तरीय व्यवस्था थी जिसे अंग्रेजो ने भारत में व्यवस्था स्थापित करने, अधिकतम आर्थिक व व्यापारिक लाभ कमाने, तथा भू-राजस्व का आंकलन करने के लिए प्रस्तुत किया, परन्तु साथ ही भारतीयों के सामाजिक संबंधो की विविधताओं एवं सूक्ष्मताओं के प्रति अनभिज्ञता का दृष्टिकोण अपनाये रखा. एकबार भारत के धार्मिक व सामाजिक स्वरुप को समझने के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समाज में मौजूद विविधताओं को उभारकर राष्ट्रीय एकता को कमजोर करने तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में फूट पैदा करने में इसका भरपूर इस्तेमाल

किया.**(Bhagat, 2001:4353)** जहाँ एक तरफ ब्रिटिश शासन ने ब्राह्मणवादी केंद्रीकृत व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास किया क्योकि यह वर्ग उसका समर्थक था तथा उसके उपनिवेशवादी उद्देश्यों के पूर्ति में सहायक था वही दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू समाज के पिछड़े व वंचित वर्गों के जातीय अस्मिता और पहचान को उभारकर भारत में जातीय तथा वर्गीय विभेद को बढ़ावा दिया. इसने अल्पसंख्यकों और दलितों के होने वाले शोषण को उभारकर जहाँ एक तरफ उनके लिए कुछ रियायतें सुनिश्चित की वही दूसरी तरफ विभिन्न धर्मो के बिच व धर्मों के अन्दर अनेकता और विभिन्नता को बढ़ावा दिया जिससे उपनिवेशवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय एकता में बाधा आई और अंग्रेजों को विभिन्न कारणों से विभिन्न वर्गों का सहयोग प्राप्त हुआ. अपने साम्राज्यवादी व औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जहाँ अंग्रेजों ने ब्राह्मणवादी अधिपत्य को बढ़ावा दिया वही अल्पसंख्यको व पिछड़ी जातियों को इसके विरुद्ध उकसाया भी.

भारतीयों के सामाजिक सरंचना के बारे में ज्यादा से ज्यादा ठोस जानकारी इकठ्ठा करने तथा उनके धर्म में दिए गये मूल्यों व मान्यताओं से परिचित होने के लिए अंग्रेजो ने भारतीय भाषाओँ, भारत के प्राचीन धर्म ग्रंथों तथा अन्य साहित्यिक रचनाओं जो भारतीय समाज के आचार-व्यवहार के बारे में जानकारी मुहैया करा सकते थे, में पारंगतता हासिल करने के लिए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक विस्तृत योजना पर कार्य करना आरम्भ किया. इसके तहत उन्होंने यूरोप में प्रचलित पुर्वदेशियता[ORIENTALISM] के सिद्धांत को आधार बनाकर भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण करना, भारत की भौगोलिकता का मानचित्रण करना तथा यहाँ की वनस्पतियों एवं प्राकृतिक साधनों का वर्गीकरण करना शुरू कर दिया. पुर्वदेशियता सिद्धांत का तात्पर्य पूर्व के सामाजिक व धार्मिक सरंचना के बारे में यूरोपियन विद्वानों का दृष्टिकोण से है. यह सिद्धांत सत्रहवी शताब्दी में यूरोप में काफी लोकप्रिय था. क्योकि औद्योगिक क्रांति के बाद शुरू हुए पूर्व-पश्चिम व्यापारिक और आर्थिक संबंधो को नया आयाम देने के लिए यह आवश्यक था कि पूर्व के देशों व वहां रहने वाले लोगों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी एकत्रित किया जाए. तथा इसके लिए भारतीय इतिहास का अध्ययन धार्मिक ग्रंथों के अनुसार करना बहुत जरुरी था क्योकि शुरू से ही भारतीय उपमहादीप के देशों में समाज तथा व्यक्ति के आचार-व्यवहार को एक आकार देने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. एडवर्ड सईद के अनुसार पुर्वदेशियता का सिद्धांत मुख्यतः यूरोपीय लेखकों के द्वारा यूरोपियन लोगों के जानकारी के लिए पूर्व के देशों के बारे में लिखी गई रचनाओं और विचारों का संग्रह था. इस सिद्धांत के माध्यम से पूर्वी देशों में व्याप्त भाषाई व नस्लीय भिन्नता को प्रस्तुत किया गया. तथा नस्लीय ऊँच-

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.10, October,2025

नीच की भावना को बढ़ा चढ़ा कर पेश किया गया.इसके अनुसार कुछ नस्लों को अन्य से श्रेष्ठ माना गया तथा नस्लीय सुधार की भावना पर बल दिया गया जिसके अनुसार यह नारा दिया गया कि हीन जातियों को श्रेष्ठ बनाना श्रेष्ठ जातियों का कर्तव्य है.

भारत में जातियों का औपनिवेशिक वर्गीकरण एवं संहिताकरण

भारतीय समाज शुरू से ही वर्ण आधारित समाज रहा है. प्राचीन हिन्दू संहिता वेद तथा उपनिषद् में भारतीय हिन्दू समाज को चार वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा क्षुद्र में बता गया था जिसका आधार कर्म था लेकिन समय के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था की विकृत परिणती जाति व्यवस्था के रूप में हुई तथा उसका आधार कर्म के स्थान पर जन्म हो गया.**(sriniwas 1962:66)** अतः जब अंग्रेज भारत में अपनी सत्ता को मजबूती प्रदान करने की प्रक्रिया में थे तो सबसे पहले इसके लिए यह आवश्यक था कि वे यहाँ के सामाजिक व धार्मिक जटिलताओं को समझते तथा अगर शासन सत्ता के मजबूती के लिए जरूरी हो तो उसमे परिवर्तन भी करते. भारत के सामाजिक संरचना को औपनिवेशिक हितों के अनुरूप गढ़ने का सर्वप्रथम प्रयास वारेन हेस्टिंग्स ने किया. उसने यूरोप में प्रचलित पुर्वदेशीय सिद्धांत को आधार बनाकर भारत में हिन्दू और मुस्लिम कानूनों का संहिताकरण किया क्योकि उसका ऐसा मानना था कि एक नए शासन प्रणाली को वैद्धता प्रदान करने के वे ठोस माध्यम हो सकते थे. हिन्दुओं के कानूनों को ब्रह्मणिक धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों तथा मुसलमानों के कानूनों को इस्लामिक धर्म गुरुओं की इस्लाम की व्याख्या के आधार पर संहिताकरण किया गया. सही अर्थो में भारत में ब्रिटिश सत्ता को मजबूत करने तथा उसके लिए उच्च धार्मिक व सामाजिक समूहों को अपने साथ मिलाने के लिए भारतीय परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों का आदर करने के नाम पर सभी सामाजिक व धार्मिक अंधविश्वासों एवं संकीर्णवादी दृष्टिकोणों को एक नया जीवन प्रदान किया गया जबकि भारत और ब्रिटेन दोनों देशो के प्रगतिशील लोगों ने इसकी आलोचना की. 1781 के **(setlement act)** में यह लिखा गया कि ''उत्तराधिकार, विरासत, तथा समझौतों से सम्बंधित सभी मामले मुसलमानों के मामले में उनसे सम्बंधित कानून एवं व्यावहारिकताओं के आधार पर तथा हिन्दुओं के मामले में उनके कानूनी व व्यावहारिक मान्यताओं के आधार पर सुलझाये जायेगें. ऐसे मामले जहाँ एक पक्ष हिन्दू या मुस्लिम है तो इसमें प्रतिवादी के कानून एवं व्यवहार लागु होगें''. इसीप्रकार हिन्दुओं एवं मुसलमानों से सम्बंधित शादी-विवाह, जातिगत मामले, एवं धार्मिक संस्थाओं और कर्मकांडो के मामले में वारेन हेस्टिंग्स ने यह नियम बनाया की ये हिन्दुओं के मामले के धर्मग्रन्थ तथा मुसलमानों के मामले में कुरान के कानून के अनुसार सुलझाये जायेगें. असल में वारेन हेस्टिंग्स का मूल

उद्देश्य यह था कि यदि वर्तमान व्यवस्था सरकार की सत्ता अथवा समाज के हित को प्रतिकूल प्रभावित नही करती तथा वह लोगों के विचारों, व्यवहारों के अनुकूल है तो उसे उन अन्य सभी कानूनों से वरीयता दी जाएगी जिनका हमारी श्रेष्ठ बुद्धि निर्माण कर सकती है. भारतीय सामाजिक व धार्मिक मामलों के निर्धारण में वारेन हेस्टिंग्स का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उसने इन हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों का संहिताकरण कर दिया. इसके अंतर्गत जाति को व्यवसाय, सामाजिक स्थिति अथवा आदर और बौद्धिक योग्यता का सूचक माना गया. इसप्रकार ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीति ने जातीय अस्मिता को सशक्त करके एक जाति को दूसरी जाति से भिड़ाकर जाति आधारित राजनीति को आकार दिया तथा इस प्रकार शासन किया जिसमें विभिन्न समूहों को राजनितिक शक्ति प्राप्त करने के लिए जातीय अस्मिता को अंगीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया गया. अंग्रेजों ने अपने प्रशासनिक व राजनितिक कार्य संचालन के लिए प्राचीन धार्मिक ग्रंथों को आधार के रूप में ग्रहण किया तथा प्रमुख हिन्दू धर्म ग्रंथ मनुस्मृति को भारतीय समाज को समझने तथा अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप समाज के आचार,व्यवहार में परिवर्तन के लिए एक विश्वसनीय माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया. मनुस्मृति ब्राह्मणों द्वारा रचित संग्रह है जिसमें ब्राह्मण व्यवहार से सम्बंधित नियम, विभिन्न जातियों के मध्य अंतर्जातीय विवाह सम्बन्धी कानून, जातिगत छुआछुत, खान-पान सम्बंधित नियम, धर्म से सम्बंधित कई पक्ष जैसे कानून,धर्म, कर्तव्य पालन इत्यादि निहित है.(**bayly 2002:25, see also,12**) मनुस्मृति को प्रसिद्द अंग्रेजी विद्वान सर विलियम जोन्स ने पुर्वदेशीय सिद्धांत के अनुरूप अंग्रेजी में अनुवाद किया ताकि ब्रिटिश जनता को भारतीय सामाजिक व धार्मिक आचार-व्यवहार के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सुगमता हो. यद्दपि सर विलियम जोन्स भारतीय क्लासिकी सिद्धान्तों का समर्थक था लेकिन मनुस्मृति की उसके द्वारा की गयी व्याख्या, अंग्रेजी सरकार की भारतीय समाज के बारे में समझ तथा इसपर नियंत्रण करने के लिए ब्रिटिश दृष्टिकोण का निर्माण करने का महत्वपूर्ण यंत्र बन गयी. सम्पूर्ण धार्मिक और सामाजिक मामलों जैसे कि वर्ण विभाजन तथा जातीय स्तर का एक ही मूलग्रन्थ में सम्पूर्ण वर्णन ने ब्रिटिश शासन के लिए भारतीय सांस्कृतिक ढांचे को समझने का रास्ता आसान कर दिया. मनुस्मृति के अनुसार भारतीय हिन्दू समाज चार वर्णों में बटा हुआ है. इसके मान्यताओं के अनुसार स्वयं ब्रह्मा ने अपने मुख, हाथ, जांघो तथा पांवों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय[योद्धा], वैश्य[व्यापारिक], और क्षुद्र[सेवक] वर्णों में समाज का वर्गीकरण किया.**(jaiswal 2002:9)** यह व्यवस्था प्लेटो द्वारा यूनानी समाज के वर्गीकरण से काफी समरूपता प्रदर्शित करती है जिसमें सामजिक वर्णों की तुलना शारीर के अंगो के रूप में की गयी है. मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण शुद्धता के स्तर पर सबसे

उच्च है,उसके बाद क्षत्रिय का स्थान आता है, फिर वैश्य व सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निम्न स्थिति क्षुद्रों की है. मनुस्मृति का सन्देश था कि अन्य लोगों एवं जातियों पर ब्राह्मण वर्ग की प्रधानता स्पष्ट है और इस व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया जा सकता क्योकि यह ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है. अंग्रेज लेखक डिरक के अनुसार ‘’इसमें कोई शक नही कि यह मूलग्रन्थ ब्राह्मणों के लिए इतना महत्वपूर्ण था कि इसके ऊपर नौ पृथक धार्मिक टीकाएँ लिखी गई. लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इसे एक व्यावहारिक प्रपत्र के रूप में महत्वपूर्ण मान्यता दिलवाई. वह आगे लिखता है कि भारतीय समाज की जानकारी प्राप्त करने के लिए इस मूलपाठ को नियमबद्ध करना अतीत से और भी अधिक महत्वपूर्ण विच्छेदन था क्योकि इस प्रक्रिया ने केवल कानून का नहीं बल्कि एक संकीर्णवादी रजिस्टर में सामाजिक सम्बन्धों का भी संहिताकरण कर दिया.

ब्रिटिश सरकार द्वारा सामाजिक व धार्मिक वर्गीय विभाजन को उभारने एवं अपने औपनिवेशिक हितों के लिए उसका उपयोग:-

भारत की उपनिवेशवादी ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन प्रणाली के संचालन के सन्दर्भ में धार्मिक ग्रंथो के आधार पर भारतीय समाज के बारे में बनाई गयी अपनी अवधारण का उपयोग अपनी सत्ता को मजबूती प्रदान करने में किया. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के सभी प्रशासकों ने अपनी औपनिवेशिक स्थिति को मजबूत करने के लिए भारतीय समाज के जाति आधारित विभाजन को उभारने का कार्य किया गया तथा प्रशासनिक निर्णय लेते समय सामाजिक आचार व्यवहारों का अनुसरण किया गया. सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारत के सभी अंग्रेज आधिकारी प्रशासक होने के साथ-साथ विद्वान भी थे. दक्षिण में थामस मुनरो तथा कोलिन मैकेंजी, केन्द्रीय भारत में जान मैल्कोलम, महाराष्ट्र में एल्फिन्स्तोंन, राजस्थान में जेम्स टांड ने राजनितिक एवं सैनिक दोनों पदों को मिलाकर अपने विशिष्ट क्षेत्रों के इतिहास एवं भौगोलिकता में अनन्य योगदान दिया. भारतीय समाज के वर्गीय संघर्ष को उभारने, अनुकूल परम्पराओं व रीति-रिवाजों को मान्यता देने की ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतिओं ने भारत को एक परम्परागत संकीर्णवादी समाज के रूप में परिवर्तित कर दिया.**(Bandyopadhyay, 1992:28)** जैसा कि लेखक ब्रायस ने टिप्पणी की कि इस परम्परागत व्यवस्था को पुनर्जीवित करने में ब्रिटिश उपनिवेशवाद ही अकेले जिम्मेदार नही था बल्कि इसके लिए भारत के उच्च वर्गों यथा ब्राह्मणों का भी महती योगदान था क्योकि वे किसी भी कीमत पर अपने वर्गीय वर्चस्व को बनाये रखना चाहते थे इसके लिए भले ही उन्हें ब्रिटिश प्रशासन का समर्थन ही क्यों न लेना पड़े.

अपनी पुस्तक '**contesting the nation-religion, community and politics of democracy**' में डेविड लुद्दन ने यह स्पष्ट किया है कि भारतीय अस्मिता को काफी हद तक ब्रिटिश सरकार ने केवल पुनःस्थापित ही नही किया बल्कि शब्द हिन्दुवाद भी उन्ही का दिया हुआ है. उनका मानना है कि शब्द हिन्दू और सिन्धु दोनों सिन्धु नदी से सम्बंधित है और सिकंदर के समय से ही सिन्धु नदी के पूर्व के लोगों को हिन्दू कहा जाता था. परन्तु ब्रिटिश सरकार ने अपने सरकारी जनगणना सम्बंधित आंकड़ों तथा चुनावों में प्रयुक्त करके इसे एक ऐसी शब्दावली के रूप में पक्का कर दिया जिसका अर्थ उन लोगों से था जो मुस्लिम, इसाई, पारसी, जैन, बौद्ध, सिक्ख तथा अन्य नही हैं. लुद्दन के अनुसार यह सच है कि ब्रिटिश भारत की बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी परन्तु इसका अर्थ यह नही था कि यहाँ के अधिकतर लोग अपने को हिन्दू धर्म के साथ जोड़ते थे. और नहीं इसका अर्थ एक ऐसे हिन्दू धर्म के साथ था जो कुरान, बाइबिल, अथवा कैथोलिक चर्च के अनुरूप एकल तथा सर्वसहमति प्राप्त संस्थाओं का समूह है जिसके इर्द-गिर्द एक हिन्दू धार्मिक अस्मिता को प्राचीन काल से ही एकताबद्ध किया गया हो. इसके विपरीत हिन्दू धर्म में अनेक देवी-देवताओं तथा सांप्रदायिक परम्पराएँ रही है जो इनके अनुयायियों में एक सामूहिक हिन्दू धार्मिक अस्मिता के निर्माण को हतोत्साहित करती है.

1857 के क्रांति के बाद भारत के धार्मिक व सामाजिक संरचना के प्रति ब्रिटिश सरकार दृष्टिकोण

कंपनी के शासन के खिलाफ 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश संसद ने प्रस्ताव पास कर भारत से कंपनी के शासन को समाप्त कर दिया. अब भारत के मामले में निर्णय सीधे ब्रिटिश संसद के द्वारा लिए जाने लगें. गवर्नर जनरल का पद समाप्त कर दिया गया तथा उसके स्थान पर भारत में वायसराय पद का सृजन किया गया जो भारत में ब्रिटिश क्राउन का प्रतिनिधि होता था. 1857 के विद्रोह के यद्दपि अनेक कारण थे लेकिन ब्रिटिश विचारकों ने इसका सबसे प्रमुख कारण भारतीयों के धर्म पर आधारित तर्कहीन रुढियों एवं अंधविश्वासों में ब्रिटिश हस्तक्षेप को बताया. इसके अतिरिक्त विद्रोह के समय प्रदर्शित हुई एक अखिल भारतीय एकता की भावना ने अंग्रेजी शासन को भारत के सन्दर्भ में अपने नीतियों पर पुनर्विचार करने को बाध्य होना पड़ा. अब सरकार की नीति भारत में वर्गीय,धार्मिक एवं जातीय विभाजन को उभारने और उसके आधार पर अपनी नीतियाँ निर्धारित करने की हो गयी. यह नीति फूट डालो और राज करो के खतरनाक मंसूबों पर आधारित थी जिसका भारत के राष्ट्रीय एवं राजनितिक भविष्य पर बहुत ही खतरनाक प्रभाव पड़ा तथा उसकी परिणति अंततः सांप्रदायिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में सामने आया. जैसा कि डिरेक ने टिपण्णी की है- औपनिवेशिक

शासन का विश्वास था कि 1857 के विद्रोह के कारण राजनितिक कम तथा मानवशास्त्रिय अधिक थे. अतः अब ब्रिटिश सरकार ने शासन का मूल आधार भारत के धर्म, जाति, रीतिरिवाजों आदि के व्यापक मानवशास्त्रिय ज्ञान में ढूढने की कोशिस की. इस सन्दर्भ में इसाई मिशिनरियों के कार्य को भारत के स्थानीय धार्मिक एवं सामाजिक रीतिरिवाजों एवं परम्पराओं में हस्तक्षेप माना गया. भारतीय जनता में यह बात घर कर गयी कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य उनके प्राचीन धार्मिक और सामाजिक रीतिरिवाजों में हस्तक्षेप कर के उनके धार्मिक परम्पराओं पर प्रहार करने की है तथा इसाई धर्म को भारत में स्थापित करने की है. ब्रिटिश विचारकों एवं अधिकारियों का यह पक्का विश्वास हो गया कि भारतीय लोगों के समझने के केवल दो मूल श्रोत है- धर्म एवं जाति. अतः यदि उन्हें अगर भारत में सुचारू रूप से शासन करना है तो जाति और धर्म के ऊपर और अधिक जानकारी इकट्ठी करने की जरुरत है. इसके अतिरिक्त यह जानने की कोशिस की गयी कि भारत का कौन सा वर्ग भारत में अंग्रेजी शासन का समर्थक बन सकता है तथा कौन सा वर्ग उसका विरोधी है. इसी आधार पर जब सेना का पुनर्संगठन आरम्भ किया गया तो ये सवाल उठाये गये कि सार्वजनिक सेवाओं में हिन्दुओं और मुसलमानों का अनुपात क्या होनी चाहिए, इसके अतिरिक्त उन्होंने उन जातियों के प्रति जिन्होंने शैक्षणिक अवसरों एवं नौकरियों पर कब्ज़ा किया हुआ था, विद्रोह के समय उनकी स्थिति के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने अपनी नीति पुनः निर्धारित की. विद्रोह के बाद महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में अपनी सभी भारतीय प्रजा को ब्रिटिश सरकार की ओर से यह विश्वास दिलाने की कोशिस की गयी कि आगे से ब्रिटिश सरकार उनके धार्मिक रीतिरिवाजों का पुरा सम्मान करेगी तथा भारत में कार्यरत ब्रिटिश अधिकारियों से भारतीयों के धार्मिक मामलों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप से मना किया गया तथा उन्हें भारतीयों के धार्मिक व सामाजिक परम्पराओं के सम्मान करने की बात की गयी. इसके अतिरिक्त महारानी द्वारा यह भी आश्वासन दिया गया कि आगे से सभी प्रकार के नौकरियों में जाति,धर्म, नस्ल इत्यादि के आधार पर भेदभाव किये बिना सभी भारतीयों को उनकी शिक्षा, योग्यता व चरित्र के आधार पर अवसर दिया जायेगा. लेकिन वस्तुतः ब्रिटिश क्राउन की यह उद्घोषणा भी अंततः प्रभुत्वशाली ब्राह्मण जाति के पक्ष में गयी क्योकि शिक्षा तक उनकी ही पहुँच सबसे ज्यादा थी. इसप्रकार महारानी के उद्घोषणा के द्वारा भी निम्न जातियों व वंचितों को कोई विशेष फायदा नही हो पाया.

जातीय और नस्लीय आधार पर सेना का पुनर्गठन

1857 के क्रांति की शुरुआत सैनिकों के विद्रोह के साथ शुरू हुई थी तथा उनके विद्रोह का प्रमुख कारण सांस्कृतिक तथा धार्मिक मामलों में अंग्रेजों द्वारा किया गया हस्तक्षेप तथा उससे उनके आस्था को ठेस पहुचना था. क्रांति के

दौरान सैनिकों द्वारा अपने क्षेत्र, भाषा, और जाति वाले लोगों के ऊपर गोली चलने से इंकार करने के बाद अंग्रेजी सरकार ने अपनी सैन्य सरंचना में इसप्रकार परिवर्तन किया कि देश के किसी भी भाग में सैन्य कार्यवाही की स्थिति में वर्गीय, जातीय आधार पर सैनिक किसी प्रकार का भेदभाव किये बिना ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान हों. इसके लिए यह सुनिश्चित किया गया कि देश के एक भाग में दुसरे भाग से नियुक्त किये गये सेना की तैनाती किया जाये तथा एक जाति विशेष वाले भाग में दुसरे लेकिन उसके विरोधी जाति से बने सेना की तैनाती हो ताकि जन विद्रोह के समय सेना बिना किसी भावावेश के विद्रोहियों के ऊपर गोलियां चला सके. सेना के भीतर व्यवस्था बनाये रखने के लिए जुलाई 1858 में युद्ध मंत्री मेजर जनरल पील की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया, इस बात का परिक्षण करने के लिए कि सेना में ऐसे कौन से परिवर्तन किये जाने चाहिए जिससे भविष्य में किसी भी प्रकार के विद्रोह से बचा जा सके. इस समिति ने अपने सिफारिस में कहा कि 1857 के क्रांति में उच्च वर्ग के सैनिकों के भागीदारी को देखते हुए आगे से सेना में उनके प्रवेश को प्ररिबंधित किया जाना चाहिए. लेकिन ब्रिटिश सरकार ने उसके इस सिफारिश को नही माना क्योकि उसके नजर में उच्च जाति के लोग जो मुख्यतः आर्य जाति से सम्बंधित होते है, में उच्च कोटि की सैन्य कुशलता पाई जाती है. इसीतरह अन्य कई आयोगों ने अपने सिफारिश में विद्रोह का प्रमुख कारण जातीय व नस्लीय माना तथा यह सिफारिश कि की ऐसे जातीय एवं प्रजातीय समूहों को भिन्न यूनिटों में विभाजन करके इनके विघटन विचारों पर काबू पाया जा सकता है. इन धार्मिक एवं जातीय समूहों को पृथक करने का एक अन्य कारण समूहों/जातियों के के मिश्रण से उत्पन्न होने वाले रोष को भी दूर करना था, जो ब्रिटिश मान्यता के अनुसार विद्रोह का प्रमुख कारण था. एक अन्य प्रमुख परिवर्तन था वीर नस्ल की खोज जिन्हें ब्रिटिश शासन ने स्वाभाविक रूप से सर्वोत्तम योद्धा के रूप में परिभाषित किया. इस पुनर्गठन के परिणामस्वरूप निम्न वर्गों एवं अछूतों, जो पहले सेना के लिए काफी अहम् थे, के लिए सेना में नौकरी के अवसर काफी सीमित हो गये सिवाय उन नस्लों के जो खुद को वीर नस्ल से होने का दावा करती थी. इस प्रक्रिया में जातीय तथा नस्लीय सिद्धान्तों को आपस में मिला दिया गया.**(Bandyopadhyaya, 1992:26)** इसके अतिरिक्त आर्यन व द्रविड़ नस्ल के ऐतिहासिक संघर्ष को आधार बनाते हुए उसको फिर से उभारने की कोशिस की गयी तथा आर्य नस्ल को वीर नस्ल के रूप में परिभाषित कर द्रविड़ों के मन में आर्यों के प्रति घृणा पैदा करने की कोशिस की गयी. यह विभाजन केवल नस्ल के आधार पर नही किया गया बल्कि यह क्षेत्र व भाषा के आधार पर भी विभाजन था. क्योकि आर्य नस्ल उत्तर भारत की जाति थी जबकि द्रविड़ दक्षिण भारत में केन्द्रित थे, आर्य भाषा के आधार पर संस्कृत बोलने वाले लोग थे जबकि द्रविड़

द्रविड़ियन भाषा बोलते थे. इसप्रकार जाति व्यवस्था को भारतीय समाज का एक आवश्यक अंग मानते हुए जातीय अंतर को सदा उभारने का प्रयास किया गया. जिससे कि १८५७ के क्रांति के बाद उभर रहे एक अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को कमजोर किया जा सके.

ब्रिटिश भारत में जनगणना की शुरुआत

भारत के जातीय, नस्लीय व वर्गीय सरंचना को अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप ढालने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा अनेक नीतियों का सहारा लिया गया जिसमे जनगणना की प्रक्रिया शुरू करना प्रमुख था. जनगणना की प्रक्रिया तो 18वीं शताब्दी में अनेक देशों में शुरू की गयी लेकिन उसका प्रमुख उद्देश्य वहां गरीबों की स्थिति का पता लगाना तथा उनकी आर्थिक स्थिति के आधार पर यदि आवश्यकता हो तो उन्हें सरकारी सहायता मुहैया कराना था. यूरोपीय देशों में जनगणना की प्रक्रिया आंकड़ो के संग्रह एवं प्रस्तुतीकरण के दृष्टिकोण से एक पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष संस्था थी. लेकिन भारत में शुरू की गयी जनगणना के मूल में जनता को आर्थिक लाभ पहुचाने की भावना नही काम कर रही थी बल्कि यह ब्रिटिश सरकार द्वारा जाति से सम्बंधित जानकारी के संहिताकरण करने का मुख्य प्रयत्न था.1857 के विद्रोह के बाद भाषा, नस्ल, धर्म, जाति, संप्रदाय आदि के अध्ययन करने पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा और इसके लिए प्रांतीय गजेटियर को सूक्ष्म अध्ययन करने तथा आंकड़े इकट्ठे करने का कार्य सौपा गया.

भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा जनगणना आरम्भ करने के कई कारण थे. प्रशासनिक दृष्टिकोण से यह बहुत महत्वपूर्ण था की अंग्रेज उस समाज के बारे में जानकारी रखे जिनपर उन्हें शासन करना था ताकि प्रशासनिक नियंत्रण और कर वसूली में सुविधा हो सके. गुहा के अनुसार ‘’जनगणना की प्रक्रिया अंग्रेजो द्वारा भारत में किसी अच्छे भावना के साथ शुरू नही की गयी थी. बल्कि यह प्रक्रिया मुगलों के समय में भी भारत में शरू की गयी थी लेकिन अंतर यह था कि जहाँ मुगलों द्वारा शुरू की जनगणना का उद्देश्य मुख्यतः भू-राजस्व और कर के निर्धारण तक था तथा इसका भौगोलिक क्षेत्र बहुत सीमित था वही अंग्रेजो द्वारा किये जाने वाले जनगणना का मुख्य उद्देश्य भारत में मानवशास्त्रिय सम्बन्धो को जानना था और इसको देश के ज्यादातर भागों में लागु किया गया.’’**(Guha, 2003:149)**

भारत में आरम्भ की गई जनगणना में औपचारिक स्तर पर ऐसे प्रश्न पूछे गये जिनका सम्बन्ध भारतीय जीवन परिवार, धर्म, भाषा, शिक्षा, जाति, व्यवसाय, वैवाहिक स्थिति, बीमारी जैसे मुद्दों से था. इनसे सम्बंधित प्रश्न पूछ कर सूचनाएं संग्रहित करके ब्रिटिश शासन इनका प्रयोग शासन के लिए कर सकता था.भारत में जनगणना की प्रक्रिया ने ब्रिटिश शासन द्वारा प्राक-औपनिवेशिक रीतिरिवाजों का

संहिताकरण करके भारत को परम्परावादी बना दिया तथा भारतीय समाज की प्रकृति के बारे में इस प्रकार के ज्ञान का निर्माण उपनिवेशवाद की नियंत्रण रणनीति का एक भाग था. भारत में जनगणना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक सामाजिक समुदाय की प्रजाति तथा जाति सम्बन्धी अस्मिता को स्पष्ट करना था ताकि समझा जा सके कि भारतीय समाज किस प्रकार कार्य करता है. जनगणना प्रत्येक भारतीय अस्मिता को जाति के इर्द गिर्द केन्द्रित करने में सफल रही. इसीतरह धर्म को भी जनगणना की सारणी की एक मौलिक श्रेणी के रूप में प्रयुक्त किया गया तथा इससे सम्बंधित आंकड़ो को बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रकाशित किया गया. धर्म का उपयोग कई अन्य क्षेत्रों में भी किया गया. उदहारण के लिए भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को प्राचीन, मध्य काल और आधुनिक काल के स्थान पर हिन्दू काल अथवा मुस्लिम काल के रूप में विभाजित किया गया. इस प्रकार भारत में जनगणना का मुख्य उद्देश्य सामाजिक व सांप्रदायिक तनावों को बढ़ाकर ब्रिटिश उपनिवेशवाद को उभरते भारतीय राष्ट्रवाद से संरक्षित करना था. हालाँकि भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न समुदाय एक साथ रह रहे थे लेकिन उनके बिच धार्मिक व जातीय भेद बहुत अस्पष्ट था और वे एक प्रकार के सांस्कृतिक सम्बन्धों में बंधे हुए थे, लेकिन जनगणना की प्रक्रिया ने उनकी एक विशिष्ट, पृथक तथा आतंरिक विरोधी जाति एवं धर्म के दृष्टिकोण से उनका स्पष्ट वर्गीकरण कर उनके बिच के विभाजन को और गहरा करने का कार्य किया.

भारत में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा सबसे पहले सिद्धान्तिक आधार पर जनगणना करने का निर्णय 1856 के शरुआत में लिया गया. इसके अनुसार 1861 में पुरे भारत में एक साथ जनगणना होना था लेकिन 1857 के विद्रोह के कारण यह जनगणना शुरू नही हो पाई. पुनः 1865 में भारत की ब्रिटिश सरकार और गृह मंत्रालय ने आपसी सहमति से यह निर्णय लिया कि 1871 में पुरे देश में जनगणना का आयोजन किया जायेगा. लेकिन 1872 में की गयी जनगणना अपने स्वरुप में काफी सीमित थी और यह ब्रिटिश नियंत्रित पुरे भारत में एक साथ नही की जा सकी थी. 1872 में किये गये जनगणना में सामाजिक वर्गीकरण का आधार जाति और वर्ग था. इसके अनुसार हिन्दू धर्म के अंतर्गत अनेक जातियों की गणना की गयी इसके अतिरिक्त मुस्लिमों के अंतर्गत सईद, शेख, पठान, और मोघुल वर्ग के रूप में वर्गीकृत किये गये.**(srivastava, 1972:9)**

इसके पश्चात 1881 में पहली बार पुरे ब्रिटिश भारत में एक साथ एक विस्तृत जनगणना का आयोजन किया गया. चुकिं औपनिवेशिक विचारधारा पर जाति एवं नस्ल का प्रभाव अत्यधिक था, अतः 1881 के भारतीय जनसँख्या के वर्गीकरण के लिए इसे प्राथमिकता दी गई तथा धर्म को

उसके बाद स्थान दिया गया. जनगणना के लिए पांच प्रकार के वर्गीकरण की योजना प्रस्तुत की गई जो इस प्रकार थी-

- हिन्दू-आर्यन 1. हिन्दू, (क) हिन्दू-ब्राह्मण, (ख), हिन्दू(आर्य-वैदिक), (ग), हिन्दू-ब्राह्मो.
  2. सिक्ख, 3. जैन, 4, बौद्ध.
- ईरानी : पारसी,
- सेमेटिक, (क) मुस्लिम, (ख) इसाई, (ग) यहूदी,
- आदिवासी,
- अन्य

इसके बाद आगे के जनगणना में भी जो क्रमशः प्रत्येक 10 साल पर आयोजित की गयी कमोवेश उपरोक्त विभाजन को ही जनगणना का आधार बनाया गया. 1891 के जनगणना में वर्ग आधारित वर्गीकरण के स्थान पर व्यवसाय आधारित जाति को को आधार बनाया गया. इन विभिन्न जनगणना के सन्दर्भ में विभिन्न सामुदायिक एवं व्यावसायिक समूहों ने कई जातीय संगठनों की स्थापना की. पुनः 1901 की जनगणना के अनुसार विभिन्न जातियों को सामाजिक श्रेष्ठता के आधार पर क्रमानुसार वर्गीकृत किया गया. 1901 के जनगणना अध्यक्ष एच. आर. रिसले ने इस बात पर विशेष बल दिया कि जातीय भिन्नता का केन्द्र्विंदु अनिवार्यतः ब्राह्मण है तथा कर्मकांडों की भिन्नता पर आधारित इनका सामाजिक स्तर भारत में जाति व्यवस्था को समझने में सम्पूर्ण स्तर पर समझने में सहायक हो सकता है. आगे चलकर भारत में सांप्रदायिक आधार पर समाज को बाटने के दृष्टिकोण से धार्मिक आधार को ज्यादा से ज्यादा उभारा गया तथा अल्पसंख्यकों के बिच यह सन्देश दिया गया की बहुसंख्यकों अथवा हिन्दुओं की अपेक्षा उनकी स्थिति राजनितिक और आर्थिक रूप से बहुत कमजोर है अतः उन्हें विशेष मांग करने के लिए तथा सामाजिक व धार्मिक और राजनितिक रूप से एक अलग से संगठित होने के लिए सरकार द्वारा उकसाया गया ताकि भारत में उभर रहे नव-राष्ट्रवाद की लहर को कमजोर किया जा सके. इस कार्य में अंग्रेजों को अपेक्षित सफलता भी मिली जब 1906-07 में मुस्लिम लीग का गठन किया गया और मुस्लिमों के लिए अलग से राजनितिक और आर्थिक मांगपत्र सरकार को सौपी गया. ब्रिटिश सरकार तो जैसे इसके लिए तैयार ही बैठी थी, उसने पहले तो 1905 में बंगाल का विभाजन किया फिर तुरंत 1909 में मार्ले-मिंटो अधिनियम के तहत मुस्लिमों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था कर अपने सांप्रदायिक एजेंडे को आगे बढाया और भारत में सांप्रदायिक विभाजन की रूपरेखा रखी गयी. इसी प्रकार 1921 के जनगणना के द्वारा वंचित व शोषित वर्गों की पहचान करने की कोशिस की गयी लेकिन

बाद में चलकर इसे 1931 की जनगणना में इस लिए छोड़ दिया गया क्योकि यह औपनिवेशिक हितों के दृष्टिकोण से उपयोगी नही पाई गयी.

समकालीन बहस और प्रासंगिकता

रजनी कोठारी (1970) ने "भारतीय राजनीति में जाति" में सुझाव दिया कि राजनीतिक क्षेत्र में जाति के प्रवेश ने विविध जनसमूह को लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में संगठित और एकीकृत करने में मदद की।(कोठारी, 1970) लॉयड आई. रुडोल्फ और सुज़ैन एच. रुडोल्फ (1967), "द मॉडर्निटी ऑफ़ ट्रेडिशन: पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया" में इस बात की पड़ताल की गई कि कैसे जाति जैसी पारंपरिक संस्थाओं को "परंपरा की आधुनिकता" और "आधुनिकता के पारंपरिकीकरण" की अवधारणाओं को प्रस्तुत करके आधुनिक राजनीतिक भूमिकाओं के लिए अनुकूलित किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि भारतीय लोकतंत्र विरासत में मिले सामाजिक स्वरूपों को मिटाने के बजाय उन्हें नया रूप देकर विकसित हुआ है। (रुडोल्फ, 1984) 1990 में वी.पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफ़ारिशों के कार्यान्वयन ने एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया, जिसने जाति के प्रश्न का मूल रूप से राजनीतिकरण कर दिया। इसने राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया, और सत्ता पारंपरिक उच्च-जाति के अभिजात वर्ग से ओबीसी और दलित समुदायों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्रीय दलों के पास स्थानांतरित हो गई। सत्तारूढ़ दल (कार्यान्वयनकर्ताओं) ने इस निर्णय को 'सामाजिक न्याय' का कार्य बताया, जबकि विपक्ष ने इसे 'जातिवाद' और राष्ट्रीय एकता एवं प्रशासनिक दक्षता के लिए खतरा बताया। दशकों से, राजनीतिक गणित में सत्तारूढ़ और विपक्षी दोनों दल या तो जाति जनगणना की मुखर मांग करते रहे हैं (कम प्रतिनिधित्व साबित करने और ओबीसी वोट बैंक को सुरक्षित करने के लिए) या इसका विरोध करते रहे हैं (मौजूदा सत्ता संरचनाओं को अस्थिर करने और अगड़ी जातियों को अलग-थलग करने से बचने के लिए)।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में जनगणनाएँ हुईं जिसमें जाति-वार आंकड़े लिए गए थे। स्वतंत्रता के बाद, भारत ने 1951 से नियमित जनगणना जारी रखी, लेकिन व्यापक रूप से **सभी जातियों का विभाजन** नहीं किया गया। केवल स्वतन्त्र भारत में आरक्षण नीति के अंतर्गत अनुसूचित जाति (SC) व अनुसूचित जनजाति (ST) का डेटा नियमित रूप से लिया गया। एक प्रमुख प्रयास था सामाजिक-आर्थिक एवं जाति जनगणना (SECC) 2011, जिसमें जाति एवं आर्थिक

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.10, October,2025

स्थिति दोनों पर डेटा लिया गया, लेकिन उस डेटा का प्रकाशन व उपयोग पूरी तरह नहीं हुआ। ऐसे में आज भी यह सवाल जीवंत है कि 'अभी कितनी जातियाँ' हैं, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति क्या है, इनको नीति निर्माण में कितनी तरह से लिया गया है — इन सब का जवाब पर्याप्त नहीं मिला है।

जाति-वार डेटा न होने से यह पता लगाना कठिन है कि किस जाति समूह की सामाजिक-आर्थिक स्थिति कमजोर है। उदाहरण के लिए, "लोकसभा की सिफारिशों, आरक्षण नीति, कल्याणकारी योजनाओं" के लिए अद्यतन आंकड़े महत्वपूर्ण हैं। कई समाजवादी दलों, पिछड़ी जातियों तथा क्षेत्रीय सरकारों द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यदि 'सामान्य' व 'वंचित' जातियों के सटीक आंकड़े हो जाएँ, तो योजनाओं का लक्षित वितरण बेहतर हो सकेगा। बिहार एवं कर्नाटक जैसे राज्यों द्वारा किए गए जाति-सर्वेक्षण ने यह दिखाया कि राज्य-स्तर पर जाति-वार डेटा उपलब्ध कराना संभव है और उस पर आधारित विमर्श हो रहा है। डेटाबेस तैयार करना, मानक जाति सूची बनाना, आत्म-रिपोर्टिंग की विश्वसनीयता – ये सब बड़ी चुनौतियाँ हैं। उदाहरण के लिए, SECC में लाखों जाति प्रविष्टियाँ थीं — 46.7 लाख (4.67 मिलियन) से अधिक विभिन्न जाति-नाम पाए गए और 8 करोड़ (80 मिलियन) से अधिक त्रुटियाँ पाई गईं।

आलोचक तर्क देते हैं कि व्यापक जाति-गणना सामाजिक विभाजन को बढ़ा सकती है, जाति-आधारित राजनीति को सुदृढ़ कर सकती है तथा राष्ट्रीय एकता को प्रभावित कर सकती है। डेटा सार्वजनिक किया जाए तो यह राजनीतिक दबाव, वोट-बैंक रणनीति तथा आरक्षण-अनुरोधों में इजाफा कर सकता है। पिछले कुछ समय में केंद्र सरकार ने घोषणा की है कि आगामी राष्ट्रीय जनगणना में जाति विवरण (caste details) को शामिल किया जाएगा। यह उस दिशा में माना जा रहा है कि देश में अब इस सवाल पर कार्रवाई हो रही है। साथ ही, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) ने कहा है कि जाति-गणना कल्याण के दृष्टिकोण से उपयोगी हो सकती है, पर इसे चुनावी उपकरण नहीं बनने देना चाहिए।

समकालीन प्रासंगिकता

स्वतंत्र भारत में जाति सामाजिक वास्तविकता से आगे बढ़कर आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श का विषय बन चुकी है. लोकतान्त्रिक भारत में जातियों के राजनीतिकरण और राजनीति के जातिकरण के कारण सामाजिक समावेशीकरण के उद्देश्य को पूरा

करने के लिए विविध जातियों के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थिति और प्रभाव के अध्ययन के लिए जातियों का सटीक डाटा होना अत्यावश्यक है. इससे ना सिर्फ हाशिये पर खड़ी जातियों को देश के मुख्य धारा में शामिल होने का अवसर मिलेगा, बल्कि जातियों के विशेषाधिकार को समाप्त कर समाज के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया तेज होगी. स्वतंत्रता के बाद भारत में संविधान के द्वारा सामाजिक भेदभाव और सामाजिक विशेषाधिकारों को समाप्त कर समता और न्याय का शासन स्थापित करने का प्रयास किया गया है. लेकिन संवैधानिक उपबंध अपने उद्देश्यों को तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब सरकार के कल्याणकारी कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें आगे बढाया जाए. अतः विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक उद्दश्यों को प्राप्त करने और सरकार की योजनाओं का लाभ वरीयता के आधार पर समाज के सबसे हाशिये पर खड़े वर्ग तक पहुंचा कर उसे देश के मुख्य धारा में शामिल करने के लिए भारत में जातिगत जनगणना शुरू की गई है.

सामाजिक न्याय एवं नीति-निर्माण

जाति-वार डेटा होने से यह संभव है कि सरकार यह आकलन कर सके कि आरक्षण व कल्याण नीतियाँ कितनी सफल रही हैं, किन जातियों को अभी भी वंचना है, कौनसे उप-जाती (sub-castes) या जातिगत समूह पिछड़े हैं। उदाहरण के लिए, डॉ. कुलदीप रत्नू ने कहा है कि जातियों के भीतर भी बहुत सारी उप-विभाजन (sub-caste) हैं और तभी नीतियाँ प्रभावी होंगी जब इनका डेटा होगा। इस प्रकार, जाति-गणना **साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण** के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन हो सकती है।

आरक्षण व संसाधनों का वितरण

भारत में आरक्षण नीति के तहत वितरित संसाधन (शिक्षा, रोजगार, सरकारी सेवाएँ) के लिए यह सवाल उठता है — क्या वर्तमान आरक्षण श्रेणियाँ (SC/ST/OBC) पर्याप्त हैं? यदि स्पष्ट संख्या हों कि कितने लोग पिछड़े समूह में हैं, तो नीति-निर्धारण अधिक न्यायसंगत हो सकती है।

सामाजिक-राजनीतिक व्यवहार

जाति-डेटा के सार्वजनिक होने से वोट-बैंक राजनीति व जातिगत मांग-चक्र को डायनामिक रूप से बदलने का अवसर मिल सकता है। इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, राजनीतिक दलों को अब अधिक सटीक आधार मिलेगा कि किस जातिगत समूह तक उनकी पहुँच है,

किन्हें वह बेहतर सेवा दे सकते हैं। वहीं, यह जातिगत राजनीति को और तीव्र कर सकता है।

डेटा-समीक्षा की आवश्यकता

डेटा लेने के बाद **प्रकाशन**, **मानकीकरण**, **सत्यापन** और **सुरक्षित उपयोग** की प्रक्रिया भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। जैसा कि एक लेख में कहा गया है: "सामाजिक-आर्थिक डेटा जाति के अनुसार अब भी अप्रकाशित है … क्योंकि 4.7 मिलियन जाति-नाम तथा विभिन्न उप-जातियाँ, वर्तनी-भिन्नताएँ, भाषा-भिन्नताएँ— इस तरह से डेटा को राष्ट्रीय रूप से संयोजित करना बेहद कठिन है।"

निष्कर्ष

सारांशतः हम कह सकते है कि पुरे ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में जाति को भारत में सामाजिक सम्बन्धो के आधार के रूप में चिन्हित करने की कोशिस की गयी. और जातीय पहचान और उनके भौगोलिक संकेन्द्रण को जानबूझ कर उभारा गया ताकि सामाजिक और राजनितिक एकता की भावना को कमजोर किया जा सके. विभिन्न जातियों की गणना और उनकी आचारशास्त्रीय वर्णन ने यह भी प्रदर्शित किया की कैसे सामाजिक और आर्थिक लाभ केवल कुछ वर्गों तक सीमित थे जबकि अन्य अभी भी वंचित थे. जनगणना की प्रक्रिया ने विभिन्न जातियों व धर्मों को अपने वर्गीय अस्मिता के प्रति जागरूक किया और अपनी वर्गीय स्थिति की तुलना संपन्न वर्गों से करने के बाद उन्हें अपने लिए विशेष आर्थिक व राजनितिक अधिकारों के मांग के लिए प्रोत्साहित किया जिसकी परिणति अल्पसंख्यकों एवं दलितों द्वारा अपने लिए अलग पृथक प्रतिनिधित्व के मांग के रूप में सामने आया. जनगणना की प्रक्रिया ने विभिन्न वंचित जातियों में एक नए आत्मबोध की भावना को पैदा किया और अंग्रेजी शासन के उपरांत लोकतान्त्रिक भारत में चुनावी प्रक्रिया के द्वारा उन्हें लोकतान्त्रिक माध्यम से अपने वर्गीय हितों की पूर्ति के लिए सशक्त किया.

सन्दर्भ सूची

1. Anderson B. 'Imagined Communities: Reflection on the Origin and Spread of nationalism', revised edition, London, Verso.
2. Bandyopadhyay S. 'caste, Protest and Identity in Colonial India: The Namasudras of Bengal, 1872-1997', London, Curzon Press.
3. Deshpande S, sunder N, " caste and census: implications for society and the social sciences", economic and political weekly, august 8, 2157-2159.
4. Jaisawal, S: caste, origin, function and dimension of change(Delhi: Manohar).
5. Talbot, I, "India and Pakistan: inventing the nation"
6. Susan B, " caste, society and politics in India from the eighteenth century to the modern age".

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.10, October,2025

7. Bandhyopadhyay, S, " from plassey to partition".
8. Bhagat, R.B., "Role of census in racial and ethnic construction: US, British and Indian censuses", Economic and Political Weekly, February 22, 686-691.
9. Chandra, N, " caste, class and the state in colonial and post-colonial India".
10. Roy, kushik, "the construction of regiments in the Indian army: 1859".
11. Bhagat R.B, "census and the construction of communalism in india", economic and political weekly, November, 4352-4355.
12. Borooah, V. K. (2004). The politics of demography: a study of inter-community fertility differences in India. *European Journal of Political Economy*, *20*(3), 551-578.
13. Guilmoto, C. Z. (2011). Demography for anthropologists: Populations, castes, and classes. *A Companion to the Anthropology of India*, 23-44.
14. Varshney, A. (2000). Is India becoming more democratic?. *The Journal of Asian Studies*, *59*(1), 3-25.
15. Rai, A. K., & Kumar, S. Caste Census and Democracy in India: Legal Challenges and Constitutional Perspectives.
16. Rudolph, L. I. (1965). The modernity of tradition: The democratic incarnation of caste in India. *American Political Science Review*, *59*(4), 975-989.
17. Bhagat, R. B. (2013). Census enumeration, religious identity and communal polarisation in India. *Asian Ethnicity*, *14*(4), 434-448.
18. Bhagat, R. B. (2024). Census, Politics, and the Construction of Identities in India. In *The Global Politics of Census Taking* (pp. 80-96). Routledge.

ponding Author: Prakash Kumar Patel
E-mail: prakashkrpatel.polsc@dsc.du.ac.in
Received: 08 September, 2025; Accepted: 26 October,2025. Available online: 30 October, 2025
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License